श्री रामजी की प्रलापलीला, हनुमान्‌जी का लौटना, लक्ष्मणजी का उठ बैठना

चौपाई :

*** उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥ अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥1॥

भावार्थ:-

वहाँ लक्ष्मणजी को देखकर श्री रामजी साधारण मनुष्यों के अनुसार(समान) वचन बोले- आधी रात बीत चुकी है, हनुमान् नहीं आए। यह कहकर श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

*** सकहु न दुखित देखि मोहि काउ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥ मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥2॥

भावार्थ:-

(और बोले-) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारास्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया॥2॥

***सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥ जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥3॥

भावार्थ:-

हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्वक वचन सुनकर उठतेक्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसका मानना मेरे लिए परम कर्तव्य था) उसे भी न मानता॥3॥

*** सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥ अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥4॥

भावार्थ:-

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार- ये जगत् में बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु जगत् में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचार कर हे तात! जागो॥4॥

*** जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥ अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥5॥

भावार्थ:-

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यंत दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा॥5॥

*** जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाई गँवाई॥ बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥6॥

भावार्थ:-

स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत् में बदनामी भले ही सह लेता (कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते) कोई विशेष क्षति नहीं थी॥6॥

*** अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥ निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥7॥

भावार्थ:-

अब तो हे पुत्र! मेरे निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो॥7॥

*** सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥ उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥8॥

भावार्थ:-

सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं?॥8॥

*** बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥ उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥9॥

भावार्थ:-

सोच से छुड़ाने वाले श्री रामजी बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं।उनके कमल की पंखुड़ी के समान नेत्रों से (विषाद के आँसुओं का) जल बह रहा है। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रघुनाथजी एक (अद्वितीय) और अखंड (वियोगरहित) हैं। भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् ने (लीला करके) मनुष्य की दशा दिखलाई है॥9॥

सोरठा :

*** प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर। आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥61॥

भावार्थ:-

प्रभु के (लीला के लिए किए गए) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गए। (इतने में ही) हनुमान्‌जी आ गए, जैसे करुणरस (के प्रसंग) में वीर रस (का प्रसंग) आ गया हो॥61॥

चौपाई :

*** हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥ तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामजी हर्षित होकर हनुमान्‌जी से गले मिले। प्रभु परम सुजान(चतुर) और अत्यंत ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य (सुषेण) ने तुरंत उपाय किया, (जिससे) लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे॥1॥

*** हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥ कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा।जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू और वानरों के समूह सबहर्षित हो गए। फिर हनुमान्‌जी ने वैद्य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया, जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आए थे॥2॥

रावण का कुम्भकर्ण को जगाना, कुम्भकर्ण का रावण को उपदेश और विभीषण-कुम्भकर्ण संवाद

चौपाई :

*** यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥ ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥3॥

भावार्थ:-

यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने अत्यंत विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुंभकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसने उसकोजगाया॥3॥

*** जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥ कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥4॥

भावार्थ:-

कुंभकर्ण जगा (उठ बैठा) वह कैसा दिखाई देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुंभकर्ण ने पूछा- हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुखसूख क्यों रहे हैं?॥4॥

*** कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥ तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥5॥

भावार्थ:-

उस अभिमानी (रावण) ने उससे जिस प्रकार से वह सीता को हर लाया था (तब से अब तक की) सारी कथा कही। (फिर कहा-) हे तात! वानरों ने सब राक्षस मार डाले। बड़े-बड़े योद्धाओं का भी संहार कर डाला॥5॥

*** दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥ अपर महोदर आदिक बीरा। परे

समर महि सब रनधीरा॥6॥

भावार्थ:-

दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्य भक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमि में मारे गए॥6॥

दोहा :

*** सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान। जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥62॥

भावार्थ:-

तब रावण के वचन सुनकर कुंभकर्ण बिलखकर (दुःखी होकर) बोला- अरे मूर्ख! जगज्जननी जानकी को हर लाकर अब कल्याण चाहता है?॥62॥

चौपाई :

*** भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥ अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥1॥

भावार्थ:-

हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्यों जगाया? हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्री रामजी को भजो तो कल्याण होगा॥1॥

*** हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥ अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥2॥

भावार्थ:-

हे रावण! जिनके हनुमान् सरीखे सेवक हैं, वे श्री रघुनाथजी क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया॥2॥

*** कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥ नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबाहा॥3॥

भावार्थ:-

हे स्वामी! तुमने उस परम देवता का विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता, पर अब तो समय जाता रहा॥3॥

*** अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥ स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥4॥

भावार्थ:-

हे भाई! अब तो (अन्तिम बार) अँकवार भरकर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर, कमल नेत्र श्री रामजी के जाकर दर्शन करूँ॥4॥

दोहा :

*** राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक। रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥63॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण से करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाए॥63॥

चौपाई :

*** महिषखाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥ कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥1॥

भावार्थ:-

भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मद से चूर रण के उत्साह से पूर्ण कुंभकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथनहीं ली॥1॥

*** देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥ अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो॥2॥

भावार्थ:-

उसे देखकर विभीषण आगे आए और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और श्री रघुनाथजी का भक्त जानकर वे उसके मन को प्रिय लगे॥2॥

*** तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥ तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥3॥

भावार्थ:-

(विभीषण ने कहा-) हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार करने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं श्री रघुनाथजी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन को मैं (बहुत) प्रिय लगा॥3॥

*** सुनु भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥ धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥4॥

भावार्थ:-

(कुंभकर्ण ने कहा-) हे पुत्र! सुन, रावण तो काल के वश हो गया है (उसके सिर पर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षस कुल का भूषण हो गया॥4॥

*** बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥5॥

भावार्थ:-

हे भाई! तूने अपने कुल को दैदीप्यमान कर दिया, जो शोभा और सुख के समुद्र श्री रामजी को

भजा॥5॥

दोहा :

*** बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर। जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥64॥

भावार्थ:-

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर रणधीर श्री रामजी का भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता, इसलिए अब तुम जाओ॥64॥

कुम्भकर्ण युद्ध और उसकी परमगति

चौपाई :

*** बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥ नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥1॥॥

भावार्थ:-

भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गए और वहाँ आए, जहाँ त्रिलोकी के भूषण श्री रामजी थे। (विभीषण ने कहा-) हे नाथ! पर्वत के समान (विशाल) देह वाला रणधीर कुंभकर्ण आ रहा है॥1॥

*** एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥ लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥2॥

भावार्थ:-

वानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिलाकर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत (उखाड़कर) उठा लिए और (क्रोध से) दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे॥2॥

*** कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥ मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥3॥

भावार्थ:-

रीछ-वानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं, परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर नहीं होता!॥3॥

*** तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥ पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥4॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान्‌जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरंत ही पृथ्वी पर गिर

पड़े॥4॥

*** पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥ चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥5॥

भावार्थ:-

फिर उसने नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओं को भी जहाँ-तहाँ पटककर डाल दिया। वानर सेना भाग चली। सब अत्यंत भयभीत हो गए, कोई सामने नहीं आता॥5॥

दोहा :

***अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव। काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥65॥

भावार्थ:-

सुग्रीव समेत अंगदादि वानरों को मूर्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दाबकर चला॥65॥

चौपाई :

*** उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥ भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥1॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रघुनाथजी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पों के समूह में मिलकर खेलता हो। जो भौंह के इशारे मात्र से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है?॥1॥

*** जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥ मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥2॥

भावार्थ:-

भगवान् (इसके द्वारा) जगत् को पवित्र करने वाली वह कीर्ति फैलाएँगे, जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाएँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान्‌जी जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे॥2॥

*** सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥ काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥3॥

भावार्थ:-

सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई तब वे (मुर्दे से होकर) खिसक गए (काँख से नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्ण ने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक-कान दाँतों से काट लिए और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना॥3॥

*** गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा॥ पुनि आयउ प्रभु पहिं

बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥4॥
भावार्थ:-
उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा और तब बलवान् सुग्रीव प्रभु केपास आए और बोले- कृपानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो॥4॥
*** नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥ सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥5॥
भावार्थ:-
नाक-कान काटे गए, ऐसा मन में जानकर बड़ी ग्लानि हुई और वह क्रोधकरके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयंकर था और फिर बिना नाक-कान का होने से और भी भयानक हो गया। उसे देखते ही वानरों की सेना में भय उत्पन्न हो गया॥5॥
दोहा :
*** जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह। एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह॥66॥
भावार्थ:-
'रघुवंशमणि की जय हो, जय हो' ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षों के समूह छोड़े॥66॥
चौपाई :
*** कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥ कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई॥1॥
भावार्थ:-
रण के उत्साह में कुंभकर्ण विरुद्ध होकर (उनके) सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरों को एक साथ पकड़कर खाने लगा! (वे उसके मुँह में इस तरह घुसने लगे) मानो पर्वत की गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों॥1॥
*** कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥ मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥2॥
भावार्थ:-
करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को हाथों से मलकर पृथ्वी की धूल में मिला दिया। (पेट में गए हुए) भालू और वानरों के ठट्ट के ठट्ट उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकलकर भाग रहे हैं॥2॥
*** रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु ऐहि बिधि अर्पा॥ मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥3॥

भावार्थ:-

रण के मद में मत्त राक्षस कुंभकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाता ने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो और उसे वह ग्रास कर जाएगा। सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाए भी नहीं लौटते। आँखों से उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं॥3॥

*** कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी॥ देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई॥4॥

भावार्थ:-

कुंभकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस सेना भी दौड़ी। श्री रामचंद्रजी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है॥4॥

दोहा :

*** सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन। मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥67॥

भावार्थ:-

तब कमलनयन श्री रामजी बोले- हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को संभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ॥67॥

चौपाई :

*** कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥ प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥1॥

भावार्थ:-

हाथ में शार्गंधनुष और कमर में तरकस सजाकर श्री रघुनाथजी शत्रुसेना को दलन करने चले। प्रभु ने पहले तो धनुष का टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया॥1॥

*** सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥ जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥2॥

भावार्थ:-

फिर सत्यप्रतिज्ञ श्री रामजी ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल सर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे॥2॥

*** कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥ घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥3॥

भावार्थ:-

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीरों केसौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर संभलकर उठते और लड़ते हैं॥3॥

*** लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥ रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं॥4॥

भावार्थ:-

बाण लगते ही वे मेघ की तरह गरजते हैं। बहुत से तो कठिन बाणों कोदेखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रुण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच। पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच॥68॥

भावार्थ:-

प्रभु के बाणों ने क्षण मात्र में भयानक राक्षसों को काटकर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर श्री रघुनाथजी के तरकस में घुस गए॥68॥

चौपाई :

*** कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥ भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा॥1॥

भावार्थ:-

कुंभकर्ण ने मन में विचार कर देखा कि श्री रामजी ने क्षण मात्र मेंराक्षसी सेना का संहार कर डाला। तब वह महाबली वीर अत्यंत क्रोधित हुआ औरउसने गंभीर सिंहनाद किया॥1॥

*** कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी॥ आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥2॥

भावार्थ:-

वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतों को आते देखकर प्रभु ने उनकोबाणों से काटकर धूल के समान (चूर-चूर) कर डाला॥2॥

*** पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक॥ तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥3॥

भावार्थ:-

फिर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष को तानकर बहुत से अत्यंतभयानक बाण छोड़े। वे बाण कुंभकर्ण के शरीर में घुसकर (पीछे से इस प्रकार) निकल जाते हैं (कि उनका पता नहीं चलता), जैसे बिजलियाँ बादल में समा जाती हैं॥3॥

*** सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥ बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए॥4॥

भावार्थ:-

उसके काले शरीर से रुधिर बहता हुआ ऐसे शोभा देता है, मानो काजल के पर्वत से गेरु के पनाले बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ वानर दौड़े। वे ज्यों ही निकट आए, त्यों ही वह हँसा,॥4॥

दोहा :

*** महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस। महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥69॥

भावार्थ:-

और बड़ा घोर शब्द करके गरजा तथा करोड़-करोड़ वानरों को पकड़कर वह गजराज की तरह उन्हें पृथ्वी पर पटकने लगा और रावण की दुहाई देने लगा॥69॥

चौपाई :

*** भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥ चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥1॥

भावार्थ:-

यह देखकर रीछ-वानरों के झुंड ऐसे भागे जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ों के झुंड! (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले॥1॥

*** यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥ कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥2॥

भावार्थ:-

(वे कहने लगे-) यह राक्षस दुर्भिक्ष के समान है, जो अब वानर कुल रूपी देश में पड़ना चाहता है। हे कृपा रूपी जल के धारण करने वाले मेघ रूप श्री राम! हे खर के शत्रु! हे शरणागत के दुःख हरने वाले! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!॥2॥।

*** सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥ राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥3॥

भावार्थ:-

करुणा भरे वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सुधारकर चले। महाबलशाली श्री रामजी ने सेना को अपने पीछे कर लिया और वे (अकेले) क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)॥3॥

*** खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥ लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥4॥

भावार्थ:-

उन्होंने धनुष को खींचकर सौ बाण संधान किए। बाण छूटे और उसके शरीर में समा गए। बाणों के लगते ही वह क्रोध में भरकर दौड़ा। उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी॥4॥

*** लीन्ह एक तेंहि सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥ धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥5॥

भावार्थ:-

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक श्री रामजी ने उसकी वह भुजाही काट दी। तब वह बाएँ हाथ में पर्वत को लेकर दौड़ा। प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दी॥5॥

*** काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥ उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥6॥

भावार्थ:-

भुजाओं के कट जाने पर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मंदराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टि से प्रभु को देखा। मानो तीनों लोकों को निगल जाना चाहता हो॥6॥

दोहा :

*** करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि। गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥70॥

भावार्थ:-

वह बड़े जोर से चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे॥70॥

चौपाई :

*** सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासुन तान्यो॥ बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥1॥

भावार्थ:-

करुणानिधान भगवान् ने देवताओं को भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणों के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा॥1॥

*** सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा॥ तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥2॥

भावार्थ:-

मुख में बाण भरे हुए वह (प्रभु के) सामने दौड़ा। मानो काल रूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया॥2॥

*** सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें॥ धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥3॥

भावार्थ:-

वह सिर रावण के आगे जा गिरा उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसेमणि के छूट जाने पर सर्प। कुंभकर्ण का प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिए॥3॥

*** परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥ तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥4॥

भावार्थ:-

वानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़ेपृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्रीरामचंद्रजी के मुख में समा गया। (यह देखकर) देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना॥4॥

*** सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥ करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥5॥

भावार्थ:-

देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत से फूलबरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गए। उसी समय देवर्षि नारद आए॥5॥

*** गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥ बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए॥6॥

भावार्थ:-

आकाश के ऊपर से उन्होंने श्री हरि के सुंदर वीर रसयुक्त गुण समूहका गान किया, जो प्रभु के मन को बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गए कि अबदुष्ट रावण को शीघ्र मारिए। (उस समय) श्री रामचंद्रजी रणभूमि में आकर (अत्यंत) सुशोभित हुए॥6॥ छंद :

*** संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी। श्रम बिंदु मुखराजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥ भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने। कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

भावार्थ:-

अतुलनीय बल वाले कोसलपति श्री रघुनाथजी रणभूमि में सुशोभित हैं।मुख पर पसीने की बूँदें हैं, कमल समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीर पर रक्त के कण हैं, दोनों हाथों से धनुष-बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-वानर सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु की इस छबि का वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत से (हजार) मुख हैं।

दोहा :

*** निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम। गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥71॥

भावार्थ:-

(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! कुंभकर्ण, जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी श्री रामजी ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं, जो उन श्री रामजी को नहीं भजते॥71॥

चौपाई :

***दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥ राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥1॥

भावार्थ:-

दिन का अन्त होने पर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। (आज के युद्ध में) योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई, परन्तु श्री रामजी की कृपा से वानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है॥1॥(घ)॥

*** छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥ बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई॥2॥

भावार्थ:-

उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं, जिस प्रकार अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुंभकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है॥2॥

*** रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥ मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ॥3॥

भावार्थ:-

स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया॥3॥

*** देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥ इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥4॥

भावार्थ:-

(और कहा-) कल मेरा पुरुषार्थ देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात! मैंने अपने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया था, वह बल (और रथ) अब तक आपको नहीं दिखलाया था॥4॥

*** एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥ इति कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥5॥

भावार्थ:-

इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया। लंका के चारों दरवाजों पर बहुत से वानर आ डटे। इधर काल के समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यंत रणधीर राक्षस॥5॥

*** लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥6॥

भावार्थ:-

>दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जय के लिए लड़ रहे हैं। हे गरुड़ उनके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता॥6॥